International Journal for Multidisciplinary Research (IJFMR)
E-ISSN: 2582-2160 ● Website: www.ijfmr.com ● Email: editor@ijfmr.com

# जातीय परिप्रेक्ष्य में सतत आजीविका और मानवीय गरिमा का संघर्ष: ग्रामीण उत्तर प्रदेश के मुसहर युवाओं का अध्ययन

**डॉ. अनीता बाजपेई[1], आकांक्षा शुक्ला[2]**

[1]प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, (उत्तर प्रदेश), भारत
[y]शोधार्थी, समाजशास्त्र विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, (उत्तर प्रदेश), भारत

**सारांश**

मुसहर समुदाय के युवा आज भी बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं और जाति आधारित भेदभाव के कारण समाज में अनेक स्तरों पर अपमान और उपेक्षा का सामना करते हैं। समकालीन संदर्भ में, जातीय इतिहास, कलंकित पहचान, सामाजिक मूल्यहीनता और नगण्य भागीदारी की स्थिति उनके लिए शिक्षा, रोजगार और सामाजिक सहयोग की उपलब्धता को अत्यंत जटिल बना देती है। 'सततता' (Sustainability) उनके लिए केवल एक विकास लक्ष्य नहीं, बल्कि एक जीवित रहने की आवश्यकता बन चुकी है। गरिमा की अनुपस्थिति न केवल उनके श्रम को अवमूल्यित करती है, बल्कि उन्हें अस्थायी और पलायनशील आजीविका की ओर भी धकेलती है।

यह शोध कार्य पीएच.डी. स्तर पर एक व्यापक अध्ययन पर आधारित है, जिसमें गुणात्मक अनुसंधान पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। इन गहराईपूर्ण साक्षात्कारों, मौखिक इतिहास, ऋतुकालीन आजीविका कैलेण्डर आदि तकनीकों के माध्यम से मुसहर युवाओं की सामाजिक संरचना, आकांक्षाएँ, आजीविका संघर्ष और गरिमा के भाव को समझने का प्रयास किया गया है। जाति की ऐतिहासिक हाशिएबंदी आज भी उनके जीवन, पहचान और स्थायित्व की आकांक्षाओं को परिभाषित करती है।

**प्रमुख शब्द:**

आजीविका, युवा, सततता, गरिमा, जाति, सामाजिक बहिष्करण, पलायन, हाशिएकरण, पहचान संकट, ग्रामीण भारत, दलित युवा

## 1: परिचय

भारतीय समाज में जाति व्यवस्था एक ऐसी सामाजिक संरचना रही है, जिसने शताब्दियों से कुछ समुदायों को सत्ता, संसाधनों और सम्मान से वंचित रखा है। इन्हीं वंचित समुदायों में मुसहर जाति एक ऐसा नाम है, जो सामाजिक बहिष्कार, ग़रीबी, और श्रम पर आधारित जीवन की त्रासदी का जीवंत उदाहरण है। उत्तर प्रदेश और बिहार जैसे राज्यों में बड़ी संख्या में निवास करने वाली यह जाति ऐतिहासिक रूप से भूमिहीन रही है और आजीविका के लिए दूसरों के खेतों में दिहाड़ी श्रमिक के रूप में कार्य करती रही है (Gurung & Kollmair, 2005)। समाज की जातीय पदानुक्रम में सबसे निचले पायदान पर स्थित मुसहर समुदाय को आज भी सामाजिक छुआछूत, अपमान और भौगोलिक अलगाव का सामना करना पड़ता है।

वर्ष 2002 में शिक्षा के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 21A के तहत अनिवार्य बनाया गया (Chowdhury, 2010), लेकिन इस संवैधानिक अधिकार का लाभ मुसहर युवाओं तक पहुँच नहीं पाया। 15 से 25 वर्ष की आयु के अधिकांश

मुसहर युवक शिक्षा, कौशल विकास और सामाजिक जागरूकता से वंचित हैं। परिणामस्वरूप, उनके पास रोजगार की स्थायी संभावनाएँ नहीं होतीं और वे मजदूरी व शारीरिक श्रम पर ही निर्भर रहते हैं, जिससे उनके जीवन में स्थायित्व (Sustainability) और गरिमा (Dignity) का अभाव बना रहता है।

सामाजिक और आर्थिक रूप से पिछड़े इस समुदाय की आजीविका की जटिलता केवल भौतिक संसाधनों की अनुपलब्धता तक सीमित नहीं है, बल्कि यह जातिगत कलंक, बहिष्कार और सामाजिक दमन की परतों से भी जुड़ी हुई है। यह शोध इस ऐतिहासिक और संरचनात्मक बहिष्कार की पृष्ठभूमि में मुसहर युवाओं की जीवन स्थितियों, आकांक्षाओं और उनके अस्तित्व की जद्दोजहद को समझने का प्रयास करता है।

सतत विकास की ब्रुंटलैंड परिभाषा के अनुसार (WCED, 1987), "विकास वह है जो वर्तमान पीढ़ियों की आवश्यकताओं की पूर्ति करे, बिना भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं को बाधित किए।" इस दृष्टिकोण से देखा जाए, तो मुसहर युवाओं की आजीविका केवल जीवनयापन नहीं बल्कि एक सामाजिक संघर्ष भी है – जिसमें उन्हें जातीय भेदभाव, संसाधनों की असमानता और सामाजिक मान्यता के अभाव में जीना पड़ता है।

आधुनिक काल में मुसहर युवक जीविका के लिए प्रायः ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में प्रवास कर जाते हैं, जहाँ उन्हें निर्माण स्थल, ईंट भट्ठों, खेतों और अन्य असंगठित क्षेत्रों में अल्प वेतन पर कठोर श्रम करना पड़ता है। दुर्भाग्यवश, प्रवास के बाद भी उनकी जातीय पहचान उनके साथ बनी रहती है और कार्यस्थलों पर भी उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाता है (Chand, 2020)। इस प्रवासीय अनुभव के दौरान भी उन्हें अपमानजनक टिप्पणियाँ, सामाजिक बहिष्कार और श्रम का शोषण झेलना पड़ता है।

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ अनुसूचित जातियों की जनसंख्या अधिक है, वहाँ मुसहर समुदाय की सामाजिक भागीदारी नगण्य है। उन्हें सामाजिक निर्णयों, ग्राम सभा की बैठकों, और सरकारी योजनाओं से दूर रखा जाता है (Singh, 2013)। इस प्रकार, गरिमा और सामाजिक मान्यता की अनुपस्थिति उनकी जीविका को न केवल अनिश्चित बनाती है, बल्कि मानसिक और सांस्कृतिक आघात भी पहुँचाती है।

इस पृष्ठभूमि में यह शोधपत्र मुसहर युवाओं के आजीविका संघर्ष को सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक और राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करता है। यह शोध गहराई से यह देखने का प्रयास करता है कि कैसे ये युवा शिक्षा, सामाजिक पूंजी और सरकारी सहायता से वंचित रह जाते हैं और उनके जीवन की दिशा केवल जीवित रहने भर तक सीमित रह जाती है।

फिर भी, कुछ मुसहर युवा जातीय पहचान की सीमाओं को समझते हुए पारंपरिक श्रम की सीमाओं को पार करने की कोशिश कर रहे हैं। ये प्रयास, चाहे सीमित हों, परंतु सामाजिक परिवर्तन की संभावनाओं के संकेत हैं। यह शोध न केवल मुसहर युवाओं की वर्तमान आजीविका स्थितियों का दस्तावेजीकरण करता है, बल्कि 'सततता' और 'गरिमा' जैसे अमूर्त अवधारणाओं को उनके जीवन के अनुभवों से जोड़ते हुए पुनर्परिभाषित करता है।

इस प्रकार, यह अध्ययन भारत के ग्रामीण उत्तर प्रदेश में मुसहर युवाओं के सामाजिक अस्तित्व, जातिगत दमन और आजीविका के संघर्ष को समझने के लिए एक गंभीर समाजशास्त्रीय प्रयास है।

## पृष्ठभूमि:

भारत की जातिगत सामाजिक संरचना में मुसहर समुदाय का स्थान अत्यंत निम्न और बहिष्कृत स्तर पर रहा है। यह समुदाय पूर्वी गंगा के मैदानों, विशेष रूप से उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड एवं नेपाल के तराई क्षेत्रों में केंद्रित है। ऐतिहासिक दृष्टि से मुसहरों की पहचान 'चूहा पकड़ने वाले' अथवा 'वनवासी' के रूप में बनी, जिससे न केवल उनका सामाजिक दर्जा निर्धारण हुआ, बल्कि उन्हें लगातार सांस्कृतिक व भौतिक वंचना का सामना करना पड़ा। "मुसहर" शब्द की उत्पत्ति 'मूस-अहर' (चूहा पकड़ने वाला) से मानी जाती है, जो उनके पारंपरिक पेशे की ओर संकेत करता है

(Risley, 1892)। यद्यपि कुछ विद्वान जैसे नेज़फील्ड इसे 'मासु-हेरा' (मांस खोजने वाला) शब्द से जोड़ते हैं, जो उनके शिकार आधारित जीवन पद्धति को दर्शाता है (Joshi & Kumar, 2011)।

ब्रिटिश जाति सर्वेक्षणों और मानवशास्त्रीय अध्ययनों में मुसहरों को 'भुइयाँ' जनजाति की एक शाखा माना गया है, जिन्होंने छोटा नागपुर क्षेत्र से पलायन कर गंगा के मैदानी क्षेत्रों में लगभग 300-350 वर्ष पूर्व बसना शुरू किया था (Risley, 1881)। आधुनिक आनुवंशिक अनुसंधानों से यह भी प्रमाणित हुआ है कि मुसहरों का डीएनए मुण्डा समुदायों (जैसे संथाल, हो) के निकट है, जिससे उनके आदिवासी मूल की पुष्टि होती है (Chaubey, 2008)। किंतु ब्राह्मणवादी सामाजिक संरचना में सम्मिलित हो जाने के कारण इन्हें 'जाति' के रूप में वर्गीकृत किया गया न कि 'जनजाति' के रूप में, जिससे उन्हें कई कानूनी और सामाजिक सुविधाओं से वंचित रहना पड़ा।

वर्तमान में मुसहर समुदाय अत्यधिक वंचित स्थिति में है। अधिकांश मुसहर परिवार भूमिहीन हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में बंधुआ या अस्थायी कृषि श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं। कई स्थानों पर वे आज भी आर्थिक संकट की स्थिति में पारंपरिक चूहा पकड़ने के कार्य तक सीमित हैं। बच्चों की मजदूरी, महिलाओं का अल्प पोषण, स्वास्थ्य सेवाओं की अनुपलब्धता और शिक्षा की बेहद निम्न स्थिति – ये सभी उनकी सतत वंचना को दर्शाते हैं। एक अध्ययन के अनुसार, मुसहर समुदाय में साक्षरता दर मात्र 3% है, जबकि महिलाओं में यह दर 1% से भी कम है (Mukul, 1999)। उत्तर प्रदेश में मुसहरों की कुल जनसंख्या 2.5 लाख के आस-पास आंकी गई है (Census 2011), किंतु स्वतंत्र संगठनों का दावा है कि इनकी वास्तविक संख्या इससे कहीं अधिक है।

मुसहरों की सामाजिक स्थिति केवल आर्थिक वंचना तक सीमित नहीं है, बल्कि यह उनके सामाजिक प्रतिष्ठान, सम्मान और 'गरिमा' के हनन से भी जुड़ी हुई है। जॉर्ज कुन्नत के अनुसार, दलितों के भीतर भी आंतरिक पदानुक्रम मौजूद है, जिसमें मुसहर सबसे निम्न पायदान पर रखे जाते हैं (Kunnath, 2013)। यह स्थिति उन्हें सामाजिक जीवन में भागीदारी और समानता से दूर रखती है, जिससे उनकी आजीविका, शिक्षा, स्वास्थ्य, सामाजिक संबंध और आत्म-सम्मान सभी प्रभावित होते हैं।

इस शोधपत्र की पृष्ठभूमि इस सामाजिक-सांस्कृतिक यथार्थ को समझने और विश्लेषित करने की कोशिश है, जहाँ जातिगत वर्चस्व और बहिष्करण की स्थितियों के भीतर मुसहर युवा किस प्रकार अपनी आजीविका की सततता और सामाजिक गरिमा के लिए संघर्ष कर रहे हैं। यह अध्ययन केवल आर्थिक पक्षों तक सीमित नहीं है, बल्कि यह यह दर्शाने का प्रयास करता है कि कैसे गरिमा (dignity) और सततता (sustainability) एक-दूसरे में अंतर्निहित हैं और कैसे ये जातिगत असमानता के साए में मुसहर युवाओं के जीवन में नई चुनौतियाँ और आकांक्षाएँ निर्मित करती हैं।

## उद्देश्य एवं अनुसंधान पद्धति:

इस शोधपत्र का मुख्य उद्देश्य मुसहर युवाओं के संदर्भ में जाति आधारित सामाजिक संरचना के भीतर आजीविका के संघर्ष, सततता (Sustainability) और गरिमा (Dignity) की अवधारणाओं को समझना एवं परिभाषित करना है। विशेष रूप से यह अध्ययन यह दर्शाता है कि सततता केवल आर्थिक उत्तरजीविता नहीं, बल्कि गरिमा जैसे मूल्य की अंतर्निहित उपस्थिति से भी जुड़ी होती है। जाति आधारित पदानुक्रमित समाज में, जहां सामाजिक, सांस्कृतिक और भौतिक संसाधनों तक पहुंच असमान होती है, वहाँ निम्नवर्गीय समुदायों के लिए गरिमा का प्रश्न अत्यंत महत्वपूर्ण हो जाता है (Mosse, 2018)।

यह शोध लेखक के डॉक्टरेट स्तर के कार्य पर आधारित है, जिसमें मुसहर युवाओं की समकालीन जीवन स्थितियों में आजीविका की सततता की प्रक्रिया को समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से विश्लेषित किया गया है। इस अध्ययन का प्रयास यह है कि यह दर्शाया जा सके कि कैसे जातिगत बहिष्करण, संसाधनों की अनुपलब्धता और सामाजिक अवमानना मुसहर युवाओं की आकांक्षाओं, आजीविका विकल्पों और सामाजिक भागीदारी को प्रभावित करती है।

शोध के लिए एक प्रकार की नृविज्ञानात्मक (Ethnographic) पद्धति को अपनाया गया, जिसमें शोधकर्ता ने क्षेत्र में 8 माह तक निवास किया। इस दौरान उत्तर प्रदेश के कुशीनगर जनपद के दो ग्रामों – मैनपुर एवं महियारवा – को अनुसंधान क्षेत्र के रूप में चुना गया। गहन साक्षात्कार, समूह चर्चाएँ, प्रेक्षण और मौखिक इतिहास जैसी गुणात्मक पद्धतियों का उपयोग करते हुए प्राथमिक आंकड़े एकत्र किए गए।

इस प्रक्रिया में कुल 40 गहन व्यक्तिगत साक्षात्कार, 3 मौखिक इतिहास कथाएँ, 2 ऋतुकालीन आजीविका कैलेंडर, 3 सामूहिक साक्षात्कार एवं कई हितधारकों (Stakeholders) के साथ संवाद किए गए। यह सभी विधियाँ मुसहर युवाओं की आजीविका रणनीतियों, उनके सामाजिक अनुभवों, और गरिमा तथा सततता के बीच के संबंध को समझने के लिए प्रयुक्त की गईं।

इस प्रकार, यह शोध एक सामाजिक रूप से बहिष्कृत समुदाय के युवाओं की जीवंत वास्तविकताओं को सामने लाते हुए यह विश्लेषण करता है कि सततता और गरिमा जैसे अमूर्त तत्व जातिगत सामाजिक ढांचे में कैसे आकार ग्रहण करते हैं, और कैसे ये तत्व आजीविका की प्रक्रिया में निर्णायक भूमिका निभाते हैं।

## आजीविका, गरिमा और सततता: सैद्धांतिक अवधारणाओं का स्थान निर्धारण और मुसहर विमर्श से अंतःसंबंध

वर्तमान शोध मुसहर युवाओं के सामाजिक-सांस्कृतिक और आर्थिक अनुभवों को *आजीविका*, *गरिमा* और *सततता* जैसे सैद्धांतिक अवधारणाओं के संदर्भ में देखने का प्रयास करता है। ये तीनों अवधारणाएँ केवल व्यक्तिगत या आर्थिक आयामों तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे जातिगत संरचना, ऐतिहासिक वंचना और सामाजिक बहिष्करण के साथ गहराई से जुड़ी हुई हैं।

### *1. जाति, गरिमा और आजीविका का अंतर्संबंध*

भारतीय सामाजिक संरचना में मुसहर समुदाय सबसे निचले पायदान पर स्थित है। यह सामाजिक स्थान स्वयं में ही गरिमा के हनन का प्रतीक बन गया है। जैसा कि कुमार (2019) उल्लेख करते हैं, जातिगत पदानुक्रम में नीची समझी जाने वाली जातियों को गरिमाहीन माना जाता है।

जाति केवल सामाजिक श्रेणी नहीं बल्कि आजीविका और श्रम का निर्धारक भी है। मॉस (Mosse, 2018) और सुवेदी (Subedi, 2013) के अनुसार जाति यह निर्धारित करती है कि कौन-सा समुदाय किस प्रकार का कार्य करेगा, किन संसाधनों का स्वामित्व रखेगा, और किन सामाजिक संबंधों में उसकी भूमिका क्या होगी। अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि आजीविका की संकल्पना जातिगत विमर्श से अछूती नहीं है।

### *2. सततता और बहिष्करण*

'सतत विकास' (Sustainability) की अवधारणा वैश्विक स्तर पर औपनिवेशिक उत्तरकाल में उभरी, परन्तु यह विमर्श अक्सर एशियाई संदर्भ में जातिगत असमानता, उत्पीड़न और ऐतिहासिक हाशियाकरण को नज़रअंदाज़ करता रहा है (Castro, 2004)। सतत विकास की चर्चाएँ अक्सर केवल पर्यावरणीय या आर्थिक आयामों तक सीमित रही हैं, जबकि दक्षिण एशिया जैसे क्षेत्रों में सामाजिक असमानता और जातिगत पूर्वाग्रह इन आयामों को गहराई से प्रभावित करते हैं। गुरुङ्ग *et al.* (2014) के अनुसार जब सामाजिक और आर्थिक अधिकारों से वंचना, जातिगत भेदभाव और बहिष्करण जैसी बाधाएँ किसी अल्पसंख्यक समुदाय के भीतर के 'अल्पसंख्यकों' पर प्रभाव डालती हैं, तो उनके लिए जीवन के सभी स्तरों पर कठिनाइयाँ बढ़ जाती हैं। इसे Pfaff-Czarnecka (2010) 'minorities-in-minorities' की संकल्पना के रूप में रेखांकित करती हैं।

### 3. मुसहर युवाओं की स्थिति

इस शोध का उद्देश्य यह समझना है कि कैसे उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र के मुसहर युवा सततता और गरिमा की

आकांक्षाओं के बीच जीवन यापन के संघर्ष में उलझे हुए हैं। वे 'स्थान और परिप्रेक्ष्य' की सीमाओं में बंधे हुए हैं—जहाँ शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाएँ, रोज़गार कौशल और राजनीतिक भागीदारी जैसी मुख्यधारा की सुविधाओं से वे निरंतर वंचित हैं।

यह स्थिति न केवल उनके सामाजिक बहिष्करण को पुनर्पुष्ट करती है बल्कि विकास और सततता के सार्वभौमिक उद्देश्यों की सीमाओं को भी उजागर करती है। इस प्रकार, आजीविका, गरिमा और सततता के बीच का यह त्रिकोणीय संबंध मुसहर युवाओं के अनुभवों में प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है।

**आजीविका: एक सैद्धांतिक अवधारणा और मुसहर विमर्श में उसका स्थान**

'आजीविका' की संकल्पना बहुविषयी विमर्शों में विकास, तकनीकी हस्तांतरण, क्षेत्रीय योजनाओं और एकीकृत ग्रामीण विकास के इर्द-गिर्द दशकों तक घूमती रही (Ellis and Biggs, 2001; Patnaik and Prasad, 2014; Scoones, 2009)। लेकिन इसे एक समग्र रूप में सैद्धांतिक ढाँचे के रूप में पहली बार चेम्बर्स और कॉनवे (1991) ने प्रस्तुत किया। उनके अनुसार, आजीविका का तात्पर्य किसी व्यक्ति की *क्षमताओं* (capabilities), *संसाधनों* (assets)—जिनमें भौतिक एवं सामाजिक दोनों पहलू शामिल हैं—तथा *जीविका चलाने हेतु गतिविधियों* (activities) से है। जब ये सभी घटक न केवल समय की आपदाओं और तनावों से उबरने में सक्षम हों, बल्कि अपनी क्षमताओं और संसाधनों को बनाए रखने अथवा बेहतर बनाने की दिशा में भी अग्रसर हों, और प्राकृतिक संसाधनों के आधार को क्षति न पहुँचाएँ, तब उस आजीविका को 'सतत' (sustainable) माना जाता है।

*समावेशी दृष्टिकोण की ओर*

1990 के दशक में अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं, शोध संस्थानों और सिविल सोसायटी संगठनों ने इस अवधारणा को नए ढंग से गहराई दी। 1998 में **IDS (Institute of Development Studies)** ने एक ढाँचा प्रस्तुत किया जिसमें पाँच परस्पर क्रियाशील घटकों—संदर्भ (context), संसाधन, संस्थाएँ, रणनीतियाँ और परिणाम—को शामिल किया गया (Solesbury, 2003)। इसके पश्चात **DFID (Department for International Development)** ने इस मॉडल को संशोधित कर सामाजिक और सांस्कृतिक पहलुओं को जोड़ा और इसे गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में लागू किया (Scoones, 2009)।

2002 में **IFAD (International Fund for Agricultural Development)** ने इस ढाँचे में एक और केंद्रीय घटक—'व्यक्ति'—को जोड़ा। इसका दृष्टिकोण *"people-centered"* था, जो यह मानता है कि आजीविका की अवधारणा केवल संसाधनों की उपलब्धता पर नहीं, बल्कि व्यक्ति की सामाजिक स्थिति, पहचान, संस्थाओं से संबंध और सेवाओं की उपलब्धता पर भी आधारित होती है (Hamilton-Peach and Townsley, 2004)। IFAD का *'हब मॉडल'* दो केंद्रीय संस्थाओं—'गरीब' और 'एजेंसी'—के बीच संबंधों के माध्यम से लोगों की परिसंपत्तियों को मजबूत करने पर बल देता है।

*शक्ति, राजनीति और आजीविका*

Scoones (2009) ने आजीविका के दृष्टिकोण को व्यवहारिक निर्णय-प्रक्रियाओं के लिए अत्यधिक जटिल माना है। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया कि शक्ति-संरचना और राजनीति, आजीविका के स्वरूप और उसकी संभावनाओं को निर्धारित करती है। वे यह भी कहते हैं कि आजीविका की समझ में *संरचना* और *एजेंसी*—दोनों को एक साथ देखने की आवश्यकता है, जिसमें स्थानीय से लेकर वैश्विक तक के राजनीतिक और संस्थागत ढाँचों का विश्लेषण किया जाए। वे निष्कर्ष निकालते हैं कि सतत आजीविका का दृष्टिकोण हमें यह समझने में मदद करता है कि स्थानीय स्तर पर लोगों के जीवन और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय नीतियों के बीच किस प्रकार संबंध बनते हैं।

आजीविका में विविधता और अंतर्विषयक दृष्टिकोण

Ellis (1998) ने आजीविका को केवल जीविकोपार्जन नहीं, बल्कि *विविध स्रोतों* की रचना की एक प्रक्रिया के रूप में

देखा है, जिसके माध्यम से ग्रामीण परिवार अपने जीवन को बेहतर बनाने और जीवित रहने के लिए सामाजिक समर्थन और आर्थिक गतिविधियों का एक मिश्रित पोर्टफोलियो तैयार करते हैं।

Niehof और Price (2001) का मानना है कि आजीविका को किसी एक क्षेत्रीय खांचे में नहीं बाँटा जा सकता। यह आर्थिक, सामाजिक, कृषि-आधारित, जातीय, राजनीतिक और सांस्कृतिक आयामों से निर्मित एक अंतःसंक्रियात्मक प्रणाली है, जिसे समझने और सशक्त करने के लिए एक अंतर्विषयक प्रयास आवश्यक है।

*भारतीय संदर्भ में आजीविका और ग्रामीण जीवन*

भारत में विद्वानों ने आजीविका को केवल आय अर्जन के साधन के रूप में नहीं, बल्कि *सामुदायिक विकास, परंपरागत ज्ञान*, और *सांस्कृतिक पहचान* से भी जोड़कर देखा है। देसिंघकर और फैरिंगटन (2009) ने प्रवास और ग्रामीण आजीविका के बीच संबंधों को उजागर किया, जबकि सुमी कृष्णा (2012) ने लिंग और ग्रामीण समुदायों के माध्यम से आजीविका को सामाजिक न्याय, पहचान और संरचनात्मक वंचना के परिप्रेक्ष्य से देखा।

ग्रामीण भारत में कृषि और भूमि न केवल आय का साधन हैं, बल्कि सत्ता और सामाजिक वर्चस्व के भी मुख्य आधार हैं। भूमि का स्वामित्व सामाजिक संबंधों और जातिगत शक्ति-संतुलन को गहराई से प्रभावित करता है।

*मुसहर युवा और आजीविका का संघर्ष*

मुसहर समुदाय के युवाओं की आजीविका केवल आर्थिक गतिविधियों का परिणाम नहीं है, बल्कि वह ऐतिहासिक उत्पीड़न, सामाजिक बहिष्करण और अवसरों की अनुपलब्धता का एक जटिल संयोग है। कृषि भूमि से लेकर रोजगार के अवसरों तक, वे अनेक बाधाओं से जूझते हैं। उनके लिए 'अधिकार आधारित विकास', 'सामाजिक गरिमा' और 'सतत आजीविका' की अवधारणाएँ सैद्धांतिक रूप में तो प्रासंगिक हैं, लेकिन व्यावहारिक धरातल पर वे आज भी इनसे बहुत दूर हैं।

## गरिमा: एक दार्शनिक अवधारणा और भारतीय जातीय यथार्थ में इसका पुनर्पाठ

'**गरिमा**' (Dignity) की अवधारणा का इतिहास प्राचीन रोम से आरंभ होता है, जहाँ इसका संबंध नैतिक, राजनीतिक, कानूनी और सामाजिक संदर्भों से था (Lewis, 2007)। समय के साथ इसमें धार्मिक मूल्यों का समावेश हुआ, परंतु *मानव गरिमा की जड़ें मानव स्वभाव में हैं*, न कि केवल धर्मशास्त्र में। थॉमस अक्विनास (1225–1274) ने मानव गरिमा को मानव की प्रकृति से जोड़ा, वहीं डेविड ह्यूम ने भी इसे मानव स्वभाव की व्याख्या से संबद्ध किया (Lewis, 2007: 94)।

इमैनुअल कांट (1724–1804) के अनुसार, गरिमा की नींव *मानव स्वायत्तता* में निहित है। उन्होंने इसे एक नैतिक श्रेणी के रूप में देखा और कहा कि प्रत्येक मानव गरिमा के साथ जन्म लेता है और सभी मनुष्यों की गरिमा समान होती है (Stoecker, 2011: 95)। किंतु यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण भारतीय समाज में जातिगत ढाँचों से टकराता है, जहाँ गरिमा व्यक्ति की जाति से निर्धारित होती है और सामाजिक अनुक्रम (hierarchy) के अनुरूप बदलती रहती है। लुईस (2007) ने यह रेखांकित किया कि हिंदू धर्म के केंद्र में स्थित जाति व्यवस्था व्यक्ति के सामाजिक अधिकारों और न्याय के प्रति एक प्रकार का *नियतिवाद* उत्पन्न करती है, जो गरिमा को संरचनात्मक स्तर पर सीमित कर देती है (Lewis, 2007: 95–96)।

*अंतरराष्ट्रीय स्तर पर गरिमा का आगमन*

1946 में संयुक्त राष्ट्र चार्टर और 1948 में *मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा* के माध्यम से "मानव गरिमा" को अंतरराष्ट्रीय कानून में स्थापित किया गया। यह घोषणा वह पहला दस्तावेज़ था जिसमें मानव गरिमा को मानवाधिकारों की आधारशिला के रूप में प्रस्तुत किया गया (Lewis, 2007: 97)। युद्धोत्तर काल में राष्ट्र-राज्यों की कल्याणकारी भूमिका के सापेक्ष, मानव गरिमा की यह अवधारणा एक वैश्विक सरोकार के रूप में उभरी (Lewis, 2007: 104)।

हालांकि, जब इस अवधारणा को भारत के सामाजिक यथार्थ में देखा जाता है, तो यह दर्शनिक सार्वभौमिकता व्यावहारिक रूप से जातीय भेदभाव में गुम हो जाती है।

*गरिमा की दार्शनिक व्याख्या*

Zylberman (2018) ने गरिमा को तीन आयामों—*परिधि* (scope), *ग्रहणशीलता* (grip) और *दिशा* (direction)—के साथ जोड़ा। उन्होंने इसे *तर्कशीलता* (rationality) से भी जोड़ा और तीन प्रकार की प्रवृत्तियों के माध्यम से स्पष्ट किया:

- **A-type**: मूल्यपरक—किसी स्थिति की अच्छाई या बुराई।
- **B-type**: नियम आधारित—किसी कार्य की वैधता या अवैधता।
- **C-type**: संबंधपरक—एक व्यक्ति द्वारा दूसरे के प्रति कर्तव्य और अधिकार।

Zylberman के अनुसार, गरिमा न केवल अंतःस्थ मूल्यता (intrinsic value) है, बल्कि यह *सामाजिक दावों की पूर्व-शर्त* भी है—अर्थात कोई भी अधिकार तभी अर्थपूर्ण होता है जब उस व्यक्ति को गरिमा का धारक समझा जाए (Zylberman, 2018: 9)।

*भारतीय सामाजिक आंदोलन और गरिमा*

भारतीय परिप्रेक्ष्य में, लाल (2020) बताते हैं कि मध्यकालीन *भक्ति आंदोलन* से लेकर आधुनिक *आदि-हिंदू* और *बहुजन आंदोलनों* तक, गरिमा एक केंद्रीय वैचारिक तत्व रही है। इन आंदोलनों ने सामाजिक बहिष्करण और जातिगत हिंसा के विरुद्ध गरिमा की आवाज़ को मज़बूती से उठाया है। हालांकि, लाल यह भी स्पष्ट करते हैं कि संविधानिक प्रावधानों और अनुसूचित जातियों के लिए बनाए गए विशेष अधिनियमों के बावजूद, आज भी जातिगत हिंसा और अपमान के अनेक रूप समाज में व्याप्त हैं (Lal, 2020: 5)। यहाँ गरिमा का निर्धारण व्यक्ति की मानवीय स्थिति के आधार पर नहीं, बल्कि उसकी जाति के आधार पर किया जाता है।

*मुसहर युवाओं के संदर्भ में गरिमा*

भारत में अनुसूचित जातियों की स्थिति सुधारने हेतु अनेक नीतियाँ और कानूनी प्रावधान अस्तित्व में हैं। *मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा* तथा संविधान के अनुच्छेद गरिमा, समानता और न्याय की गारंटी देते हैं। किंतु जब हम **मुसहर समुदाय के युवाओं** की स्थिति को देखते हैं, तो पाते हैं कि इन संवैधानिक और अंतरराष्ट्रीय अवधारणाओं के बावजूद, वे आज भी *अछूतपन, सामाजिक बहिष्करण, और संरचनात्मक हिंसा* के शिकार हैं। उनकी गरिमा न तो समाज में स्वीकृत है और न ही अधिकारों के स्तर पर सशक्त। जाति आधारित श्रेणीकरण, शिक्षा व स्वास्थ्य सुविधाओं की अनुपलब्धता, और राजनीतिक भागीदारी से वंचना, उनकी गरिमा को निरंतर अपदस्थ करते हैं।

## सततता: सामाजिक विकास, न्याय और हाशिये की पहचान

**सततता** केवल पर्यावरणीय विकास या संसाधनों के संरक्षण तक सीमित नहीं है, बल्कि यह एक *समग्र सामाजिक दृष्टिकोण* को भी अपने भीतर समाहित करती है। वुडक्राफ्ट (2015) के अनुसार, *सामाजिक सततता* व्यक्ति के *कल्याण, सामाजिक पूँजी* और *गुणवत्तापूर्ण जीवन* से गहराई से जुड़ी होती है, विशेषकर समुदाय और पड़ोस स्तर पर। इसके अंतर्गत भौतिक संरचना के डिज़ाइन, सामाजिक अवसंरचना, सांस्कृतिक जीवन को प्रोत्साहन देने वाली व्यवस्थाएँ, नागरिक सहभागिता के तंत्र, और सामाजिक विकास के लिए खुले स्थान शामिल होते हैं।

ज़ुओ जिन और फ्लिन (2012) ने निर्माण क्षेत्र में सामाजिक सततता की पड़ताल करते हुए इसे तीन स्तरों पर विभाजित किया—*आंतरिक हितधारक, बाह्य हितधारक*, और *व्यापक सामाजिक संदर्भ*। इनके अनुसार सततता केवल संरचनात्मक विकास नहीं, बल्कि मानव संबंधों, सहभागिता और सामाजिक संतुलन को भी सुनिश्चित करती है।

बोस्त्रोम (2012) और बाफोए व मुतिस्या (2015) जैसे विद्वान मानते हैं कि सामाजिक सततता *मानव कल्याण, जीवन की गुणवत्ता, सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक विविधता, लोकतांत्रिक अधिकार, लैंगिक संवेदनशीलता, मानवाधिकारों*

*और सामाजिक पूँजी के विकास* से जुड़ी होती है। स्पैन्जेनबर्ग (2002) आगे जोड़ते हैं कि यह व्यक्ति के *शैक्षणिक स्तर, कौशल, अनुभव, आय, उपभोग की क्षमता और समाज में भागीदारी के अधिकार* को भी केंद्र में रखती है। अतः सततता एक सक्रिय सामाजिक प्रक्रिया है, जो व्यक्ति की *संभावनाओं को सशक्त* करती है।

*ब्रंटलैंड रिपोर्ट और सतत विकास की दृष्टि*

आधुनिक सततता की अवधारणा में *ब्रंटलैंड रिपोर्ट* (1987) की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। इस रिपोर्ट के अनुसार, सतत विकास का आशय है *वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियों की आवश्यकताओं* को ध्यान में रखते हुए नीति-निर्माण। किबर्ट और सहयोगियों (2012) के अनुसार, सततता के दो मुख्य आयाम हैं—*व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति* और *विकास की निरंतर प्रकृति*। यद्यपि यह विचार समावेशी प्रतीत होता है, परंतु *हाशिये पर मौजूद समुदायों* के लिए, विशेषकर मुसहर युवाओं जैसे समूहों के लिए, इन मूल्यों की पहुँच अत्यंत सीमित रहती है। उनके जीवन में विकास की प्रक्रिया न तो निरंतर रही है और न ही उनकी आवश्यकताओं को कभी केंद्र में रखा गया।

*संगठनों और व्यक्तियों के स्तर पर सततता*

स्टानिस्किएने और स्टांकेविसिउटे (2018) ने सामाजिक सततता को संगठनों के सन्दर्भ में छह प्रमुख आयामों में विभाजित किया: *सहभागिता, सहयोग, समान अवसर, व्यक्तिगत विकास, स्वास्थ्य और सुरक्षा, तथा बाह्य साझेदारी*। इन सभी आयामों का संबंध केवल संगठनों से नहीं है, बल्कि *व्यक्तिगत सततता* और सामाजिक विविधता में रहने वाले लोगों के जीवन से भी है। जब समाज के वंचित वर्ग इन आयामों से वंचित रह जाते हैं, तो उनकी सततता स्वतः बाधित हो जाती है।

*मुसहर युवाओं के संदर्भ में सततता का संकट*

मुसहर समुदाय के युवा *रोज़गार के अवसरों, मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता*, और *गरिमापूर्ण जीवन* से वंचित हैं। उनके लिए *सतत विकास* का परंपरागत ढाँचा एक अवधारणात्मक विलास प्रतीत होता है, जिसका कोई व्यावहारिक प्रभाव उनके जीवन पर नहीं पड़ता। ऐसे परिदृश्य में ब्रंटलैंड रिपोर्ट में वर्णित सततता की परिभाषा सीमित हो जाती है।

इस शोध का उद्देश्य सततता को *जीवित रहने की जद्दोजहद, रोज़गार की स्थायित्वता*, और *सामाजिक गरिमा* के संदर्भ में पुनः परिभाषित करना है। यह केवल नीति और योजना की भाषा में नहीं, बल्कि *मुसहर युवाओं की जीवन वास्तविकताओं* में उतरकर सततता के उस स्वरूप को खोजना चाहता है, जो उनके *अस्तित्व और अधिकार* दोनों को संबोधित करे।

समुदाय की आवाज़ें, धारणाएँ और सामाजिक संदर्भ

## शिक्षा की स्थिति और आजीविका से जुड़ा संघर्ष

मुसहर समुदाय के युवाओं की शिक्षा की स्थिति उनके ऐतिहासिक और सामाजिक परिप्रेक्ष्य में गहराई से जमी हुई है। *शोषण, बहिष्करण, और पड़ोस की असहयोगी परिस्थितियाँ* उन्हें औपचारिक शिक्षा से दूर करती रही हैं। शिक्षा प्रणाली में उनकी भागीदारी न केवल कम है, बल्कि शिक्षा प्रणाली से जुड़े हितधारकों द्वारा भी उनके प्रति पर्याप्त प्रेरणा या पहल नहीं दिखाई देती।

**प्राथमिक आंकड़ों** के अनुसार, मुसहर समुदाय में युवाओं की साक्षरता दर बहुत कम है। नीचे दी गई तालिका से स्पष्ट होता है कि 14 वर्ष से कम आयु के केवल 8.1% बच्चे ही प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर पाए हैं, जबकि 15–25 आयु वर्ग में केवल 4% ही प्राथमिक स्तर तक पहुँच सके हैं। **अधिकांश (26.6%) युवा पूर्णतः निरक्षर हैं**, और केवल 0.2% ही उच्च शिक्षा (स्नातक एवं उससे ऊपर) तक पहुँचे हैं। इसकी तुलना में 2011 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित

जातियों की औसत साक्षरता दर 66.1% और देश की कुल औसत 73% है (राघवेंद्र, 2020)। इससे यह स्पष्ट होता है कि मुसहर युवाओं की शिक्षा में भारी पिछड़ापन है।

**तालिका 1: आयु के अनुसार शिक्षा की स्थिति (प्रतिशत में)**

| आयु वर्ग | निरक्षर (%) | प्राथमिक (%) | जूनियर एवं 10वीं तक (%) | सीनियर एवं 12वीं तक (%) | स्नातक एवं ऊपर (%) | स्कूल नहीं जा रहे (%) | कुल (%) |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| 14 वर्ष एवं कम | 13.1 | 8.1 | 0.6 | 0 | 0 | 16 | 37.8 |
| 15 से 25 वर्ष | 26.6 | 4 | 1.8 | 0.1 | 0 | 0 | 32.5 |
| 26 से 35 वर्ष | 8.9 | 1.5 | 0.5 | 0 | 0 | 0 | 10.9 |
| 36 से 45 वर्ष | 11.3 | 0.3 | 0.1 | 0.1 | 0.2 | 0 | 12 |
| 46 से 60 वर्ष | 5 | 0.4 | 0.2 | 0 | 0 | 0 | 5.6 |
| 61 वर्ष से ऊपर | 1.3 | 0 | 0 | 0 | 0 | 0 | 1.3 |
| कुल | 66.1 | 14.3 | 3.2 | 0.2 | 0.2 | 16 | 100 |

**स्रोत:** प्राथमिक जनसांख्यिकीय डेटा

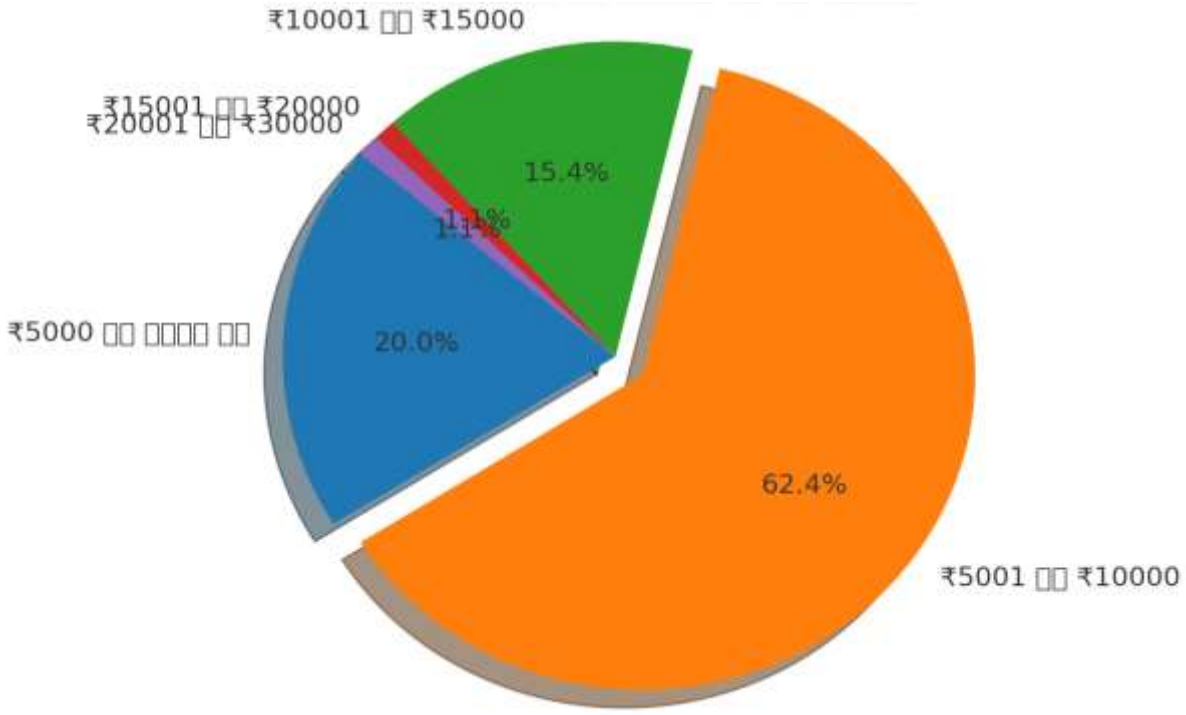


**चित्र 1. पारिवारिक आय**

### आय और शिक्षा के बीच संबंध

मुसहर समुदाय की औसत **मासिक पारिवारिक आय ₹10,000 से कम** पाई गई, जो कि मुख्यतः **कृषि मजदूरी और अस्थायी दिहाड़ी कार्यों** से आती है। यह आय सीमित और अनिश्चित होने के कारण किशोरावस्था में ही बच्चे रोज़गार के लिए विवश हो जाते हैं। **14–15 वर्ष की उम्र से पहले ही बहुत से बच्चे काम पर लग जाते हैं**, जिससे उनका औपचारिक शिक्षा से जुड़ाव और भी कमजोर हो जाता है।

***"मेरा बड़ा बेटा आठवीं में पढ़ता था। गाँव के कुछ लड़के जो कमाई के लिए बाहर जाते थे, उन्होंने उसे भी साथ ले जाने को कहा और वह अहमदाबाद चला गया। वह नासमझ था और कम उम्र में ही काम पर लग गया।" — (दुर्गावती, परिवर्तित नाम, मैनपुर गाँव)***

### रोजगार के अवसरों की कमी और व्यावसायिक कौशल का अभाव

कम शिक्षा और कम आय के कारण मुसहर युवाओं में *रोजगार के लिए आवश्यक कौशलों का अभाव* स्पष्ट रूप से देखा जाता है। अधिकतर युवा *ईंट भट्ठों, खेतों, या आस-पास की जातिगत श्रम-आधारित नौकरियों* में संलग्न हो जाते हैं। उनके पास न तो तकनीकी प्रशिक्षण है, न ही उन्हें कोई मार्गदर्शन मिलता है।

यह स्थिति एक **दुष्चक्र** बन गई है—**कम शिक्षा → कम आय → कम कौशल → असंगठित श्रम → फिर कम शिक्षा**। यह दुष्चक्र मुसहर युवाओं को सामाजिक और आर्थिक रूप से उभरने से रोकता है।

मुसहर समुदाय के युवाओं की शिक्षा और आजीविका के बीच गहरा संबंध है। जब तक शिक्षा के क्षेत्र में समावेशी पहल नहीं होगी और समुदाय के आर्थिक संसाधनों को मज़बूत नहीं किया जाएगा, तब तक यह वर्ग मुख्यधारा में नहीं आ पाएगा। इसलिए, ऐसी **रोजगार रणनीतियों** की आवश्यकता है जो *शिक्षा, कौशल, और गरिमामय जीवन* को केंद्र में रखती हों।

### (अ)गरिमा और युवाओं की आकांक्षाओं की सीमाएँ

शिक्षा, आय और सामाजिक स्थिति पर पूर्व चर्चा के आधार पर मुसहर समुदाय की सामाजिक दशा और उनके दैनिक जीवन की तस्वीर स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है। इस खंड में मुसहर युवाओं की सामूहिक आकांक्षाएँ, उनके अभिभावकों की अपेक्षाएँ तथा ये आकांक्षाएँ उनके सामाजिक परिवेश और संघर्षों से कैसे प्रभावित होती हैं, इस पर प्रकाश डाला गया है। अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि इन आकांक्षाओं पर अनेक सामाजिक-आर्थिक कारणों की जटिलता का प्रभाव है, जिसके कारण उनकी आकांक्षाएँ सीमित रह जाती हैं।

जैसा कि पहले स्पष्ट किया गया, सीमित शिक्षा, कम रोजगारोन्मुखी कौशल, निम्न आय और गरिमाहीन सामाजिक एवं जीवन स्थितियाँ मिलकर एक ऐसा परिवेश निर्मित करती हैं, जिसमें युवा अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति की आकांक्षा तक ही सीमित रह जाते हैं। ऐतिहासिक भेदभाव, जातिगत पूर्वग्रह और कृषि भूमि से वंचित होने के कारण उनके मन में उच्च शिक्षा की चाह प्रायः उत्पन्न ही नहीं हो पाती। अधिकांश अभिभावकों की यह अभिलाषा होती है कि उनके बच्चे कम से कम विद्यालय की पढ़ाई पूरी करें, किंतु 14 या 15 वर्ष की आयु तक पहुँचते-पहुँचते अनेक युवा पढ़ाई छोड़कर कार्य करने लगते हैं।

**चित्र 2: अध्ययन से प्राप्त आकांक्षा मानचित्र**

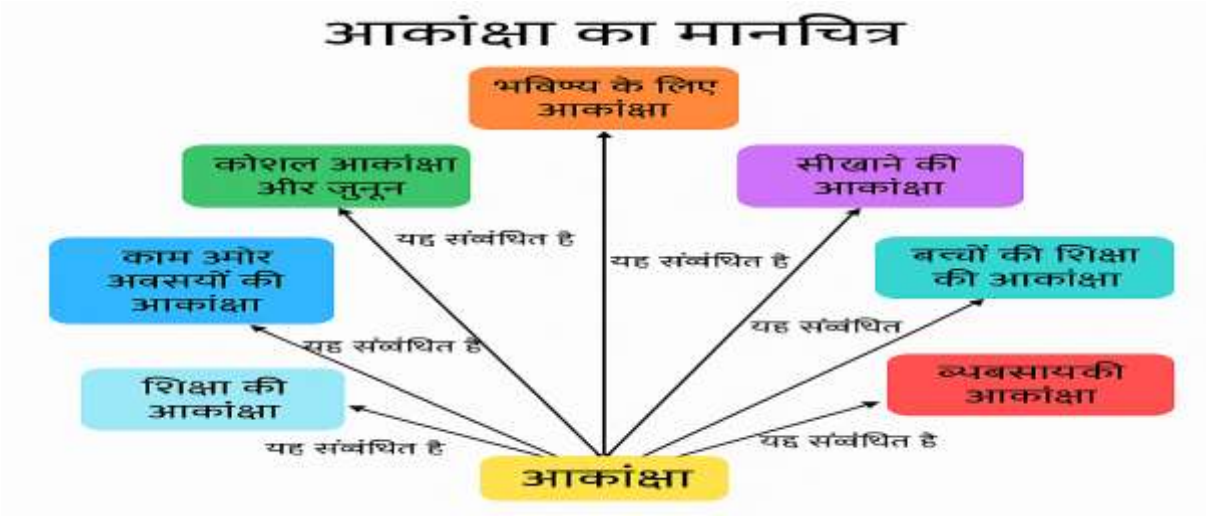


**चित्र 2: अध्ययन से प्राप्त आकांक्षा मानचित्र)**

कई युवा इस बात का पश्चाताप करते हैं कि उन्होंने शिक्षा पूरी नहीं की। उनकी आकांक्षा दैनिक मज़दूरी प्राप्त करने तक ही सीमित रह जाती है। साथ ही, वे यह भी आशा रखते हैं कि उन्हें सरकारी योजनाओं से लाभ मिलेगा — जैसे मकान निर्माण, राशन की समय पर आपूर्ति आदि।

अध्ययन में यह भी सामने आया कि मुसहर युवाओं की आकांक्षाएँ शिक्षा, बेहतर रोजगार अवसरों और छोटे व्यवसाय (जैसे किराना दुकान) शुरू करने तक सीमित हैं। कई युवा सरकारी योजनाओं के अंतर्गत लाभ प्राप्त करने की आकांक्षा रखते हैं — जैसे पक्के मकान का निर्माण, वृद्धजनों के लिए पेंशन, तथा सब्सिडी वाली राशन प्रणाली। इन आकांक्षाओं से यह स्पष्ट होता है कि रोजगार के अवसरों की भारी कमी और उनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति अत्यंत दयनीय है।

कृषि भूमि की अनुपलब्धता ने रोज़गार की अनिश्चितता को और बढ़ाया है। मुसहर समुदाय को पारंपरिक रूप से शारीरिक श्रम से संबंधित कार्यों तक ही सीमित रखा गया है, जैसे ईंट भट्टा, खेतों की जुताई या निर्माण कार्य। इन कार्यों में उन्हें अक्सर अपमानजनक भाषा में पुकारा जाता है और गरिमा रहित व्यवहार का सामना करना पड़ता है। यद्यपि वे इन कार्यों को स्वयं "गरिमाहीन" नहीं कहते, किन्तु उनके शब्दों में इनसे जुड़ी अरुचि और असहजता स्पष्ट दिखाई देती है।

वास्तव में, अधिकांश मुसहर युवा ईंट भट्टों या खेतों में काम करने की अपेक्षा गाँव से बाहर जाकर कोई और कार्य करना अधिक पसंद करते हैं। यह संकेत करता है कि वे पारंपरिक "जाति आधारित" काम से मुक्ति चाहते हैं।

## इतिहास, गरिमा और आज की वास्तविकता

इतिहास में मुसहर समुदाय को मिला अपमान आज भी उनके जीवन में प्रतिबिंबित होता है। उनके घर अधिकतर घास, बाँस या अधपक्की ईंटों से बने होते हैं। सरकारी आवास योजनाओं के अंतर्गत मिलने वाली सहायता भी अपर्याप्त है, और भ्रष्टाचार के कारण उन्हें पूरी राशि नहीं मिलती। अच्छा और सुरक्षित घर उनकी सबसे बड़ी आकांक्षा है।

दूसरी ओर, आस-पास की गैर-मुसहर जातियाँ उन्हें आलसी, गैर-जिम्मेदार और अज्ञानी करार देती हैं। ये टिप्पणियाँ मुसहर युवाओं के आत्मसम्मान को ठेस पहुँचाती हैं और वे अपने बारे में समाज की इन धारणाओं से संघर्ष करते रहते हैं।

इस अध्ययन में यह भी स्पष्ट हुआ कि मनरेगा, कृषि मज़दूरी, निर्माण कार्य, ईंट भट्टा आदि जो रोजगार विकल्प उपलब्ध हैं, वे उनके लिए न केवल सीमित हैं, बल्कि जातिगत कलंक से भी जुड़े हुए हैं। इस कारण वे इन कार्यों को स्वीकारने में झिझकते हैं।

मुसहर युवाओं की आकांक्षाएँ शिक्षा और रोजगार जैसी मूलभूत आवश्यकताओं तक सीमित हैं। यह सीमितता केवल उनकी आर्थिक स्थिति से नहीं, बल्कि उनके सामाजिक परिवेश, ऐतिहासिक शोषण और गरिमाहीन जीवन स्थितियों से उत्पन्न होती है। इन आकांक्षाओं की संकीर्णता उनकी आजीविका रणनीतियों, सामाजिक पहचान और सततता के संघर्ष को परिभाषित करती है — और यह सीधे-सीधे गरिमा के प्रश्न से जुड़ा हुआ है।

## आजीविका रणनीतियाँ एवं गरिमा संकट — मुसहर युवाओं की सततता की खोज

*ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में आजीविका की रणनीतियाँ: एक बहुस्तरीय विश्लेषण*

मुसहर समुदाय के युवाओं की वर्तमान जीवन स्थितियाँ और उनकी सततता को समझने के लिए उनकी आजीविका की रणनीतियों का विश्लेषण आवश्यक है। जैसा कि Scoones (2009) के अनुसार, ग्रामीण समुदायों के लिए तीन प्रमुख आजीविका रणनीतियाँ होती हैं—कृषि आधारित कार्य, प्रवास, तथा कृषि विविधीकरण। मुसहर युवाओं के संदर्भ में ये तीनों ही रणनीतियाँ अलग-अलग रूपों में दिखाई देती हैं:

1. **कृषि आधारित मजदूरी:** मुसहर समुदाय ऐतिहासिक रूप से कृषि कार्यों में दिहाड़ी मजदूरों के रूप में कार्यरत रहा है। वे ज़मीन के मालिक नहीं रहे, अपितु सवर्ण जमींदारों के खेतों में खाद्यान्न आधारित मजदूरी पर काम करते रहे हैं। आज भी कुशीनगर जनपद के अधिकांश गाँवों में युवा—चाहे पुरुष हों या महिलाएँ—मौसमी कृषि कार्यों में संलग्न हैं। परंतु, इन कार्यों की अस्थिरता, कम मजदूरी और लिंग आधारित भेदभाव (महिलाओं को पुरुषों से 60% कम मजदूरी) इन युवाओं को इस आजीविका से विमुख कर रही है।
2. **प्रवास: मजबूरी की रणनीति:** कृषि कार्यों की सीमितता एवं स्थानीय बाज़ार में रोजगार के अभाव के कारण, प्रवास मुसहर युवाओं की एक सामान्य रणनीति बन चुकी है। वे निर्माण कार्य, साड़ियों की रंगाई-छपाई, और लोहा उद्योग जैसे खतरनाक व अनिश्चित कार्यों में संलग्न रहते हैं। इन कार्यों से न तो शिक्षा सुनिश्चित होती है, न ही सामाजिक स्थिति में कोई सुधार। प्रवास केवल 'जीवन-निर्वाह' का माध्यम बन पाया है, 'जीवन-संवर्धन' का नहीं।
3. **स्थानीय विकल्प और सीमित व्यापारिक अवसर:** कुछ मुसहर युवक ईंट भट्टों, लोडिंग-अनलोडिंग तथा निर्माण कार्यों में स्थानीय रूप से काम करते हैं, किंतु यह कार्य भी अस्थायी और श्रम आधारित है। गाँवों में दुकान खोलने के प्रयास भी सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक संसाधनों की कमी और जातीय विरोध के कारण विफल हो जाते हैं।

*गरिमा का संकट: ऐतिहासिक कलंक और समकालीन अपमान*

मुसहर समुदाय को सामाजिक रूप से 'चूहा खाने वाला', 'अस्पृश्य' व 'मदमस्त' समुदाय के रूप में चित्रित किया गया है। यह कलंक केवल सामाजिक दृष्टिकोण नहीं, बल्कि उनके जीवन की वास्तविकता में प्रत्यक्ष है। कार्यस्थलों पर अपमानजनक भाषा, निम्न सामाजिक व्यवहार और उनके कपड़ों, स्वच्छता व रहन-सहन पर आलोचना—इन सबके कारण उनकी गरिमा प्रतिदिन कुचली जाती है।

## "मैंने खुद देखा है कि वे हमें अपने सामने चारपाई पर नहीं बैठने देते थे, और विरोध करने पर मारते भी थे।" — एक अनुसंधान प्रतिभागी, मैनपुर गाँव

युवाओं की गरिमा पर यह संकट केवल सामाजिक व्यवहार में नहीं, बल्कि सरकारी योजनाओं की विफलता, भ्रष्टाचार, जातीय साजिशों और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया से बहिष्करण में भी परिलक्षित होता है। मनरेगा में काम माँगने गई महिलाओं को प्रधानी से कोई उत्तर नहीं मिला, महीनों इंतजार के बावजूद काम नहीं मिला।

*आजीविका, अस्वीकृति और सामाजिक बहिष्करण का चक्र*

मुसहर युवाओं की आजीविका रणनीतियाँ एक 'अस्वीकृति चक्र' का हिस्सा बन गई हैं:

- सरकारी योजनाओं में सबसे अंत में स्थान मिलना
- बाज़ार में दुकान खोलने पर विपक्ष की साजिशें
- कौशल विकास की अनुपलब्धता
- शराब की बिक्री जैसे कार्यों में उलझना और उससे उपजी सामाजिक आलोचना

**"हमारी दुकानें नहीं चलतीं, लेकिन जो लोग शराब बेचते हैं, उनकी दुकानें चलती हैं।" — फूलमती, खदही बस्ती**

*सततता या संघर्ष?*

मुसहर युवाओं की आजीविका रणनीतियाँ सततता की ओर नहीं, बल्कि संघर्ष की ओर संकेत करती हैं। सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक संसाधनों की अनुपलब्धता, जातीय कलंक, सरकारी विफलताएँ और गरिमा का लगातार हनन—इन सबने मुसहर युवाओं को अपने भविष्य के प्रति आशाविहीन बना दिया है। प्रवास, अस्थायी रोजगार और अस्वीकृति से भरे उनके जीवन में 'सततता' एक धुंधली कल्पना मात्र है।

## आजीविका रणनीतियाँ एवं गरिमा संकट — मुसहर युवाओं की सततता की खोज

*ग्रामीण परिप्रेक्ष्य में आजीविका की रणनीतियाँ: एक बहुस्तरीय विश्लेषण*

मुसहर समुदाय के युवाओं की वर्तमान जीवन स्थितियाँ और उनकी सततता को समझने के लिए उनकी आजीविका की रणनीतियों का विश्लेषण आवश्यक है। जैसा कि Scoones (2009) के अनुसार, ग्रामीण समुदायों के लिए तीन प्रमुख आजीविका रणनीतियाँ होती हैं—कृषि आधारित कार्य, प्रवास, तथा कृषि विविधीकरण। मुसहर युवाओं के संदर्भ में ये तीनों ही रणनीतियाँ अलग-अलग रूपों में दिखाई देती हैं:

1. **कृषि आधारित मजदूरी:** मुसहर समुदाय ऐतिहासिक रूप से कृषि कार्यों में दिहाड़ी मजदूरों के रूप में कार्यरत रहा है। वे ज़मीन के मालिक नहीं रहे, अपितु सवर्ण जमींदारों के खेतों में खाद्यान्न आधारित मजदूरी पर काम करते रहे हैं। आज भी कुशीनगर जनपद के अधिकांश गाँवों में युवा—चाहे पुरुष हों या महिलाएँ—मौसमी कृषि कार्यों में संलग्न हैं। परंतु, इन कार्यों की अस्थिरता, कम मजदूरी और लिंग आधारित भेदभाव (महिलाओं को पुरुषों से 60% कम मजदूरी) इन युवाओं को इस आजीविका से विमुख कर रही है।
2. **प्रवास: मजबूरी की रणनीति:** कृषि कार्यों की सीमितता एवं स्थानीय बाज़ार में रोजगार के अभाव के कारण, प्रवास मुसहर युवाओं की एक सामान्य रणनीति बन चुकी है। वे निर्माण कार्य, साड़ियों की रंगाई-छपाई, और लोहा उद्योग जैसे खतरनाक व अनिश्चित कार्यों में संलग्न रहते हैं। इन कार्यों से न तो शिक्षा सुनिश्चित होती है, न ही सामाजिक स्थिति में कोई सुधार। प्रवास केवल 'जीवन-निर्वाह' का माध्यम बन पाया है, 'जीवन-संवर्धन' का नहीं।
3. **स्थानीय विकल्प और सीमित व्यापारिक अवसर:** कुछ मुसहर युवक ईंट भट्टों, लोडिंग-अनलोडिंग तथा निर्माण कार्यों में स्थानीय रूप से काम करते हैं, किंतु यह कार्य भी अस्थायी और श्रम आधारित है। गाँवों में दुकान खोलने के प्रयास भी सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक संसाधनों की कमी और जातीय विरोध के कारण विफल हो जाते हैं।

*गरिमा का संकट: ऐतिहासिक कलंक और समकालीन अपमान*

मुसहर समुदाय को सामाजिक रूप से 'चूहा खाने वाला', 'अस्पृश्य' व 'मदमस्त' समुदाय के रूप में चित्रित किया गया है। यह कलंक केवल सामाजिक दृष्टिकोण नहीं, बल्कि उनके जीवन की वास्तविकता में प्रत्यक्ष है। कार्यस्थलों पर

अपमानजनक भाषा, निम्न सामाजिक व्यवहार और उनके कपड़ों, स्वच्छता व रहन-सहन पर आलोचना—इन सबके कारण उनकी गरिमा प्रतिदिन कुचली जाती है।

"मैंने खुद देखा है कि वे हमें अपने सामने चारपाई पर नहीं बैठने देते थे, और विरोध करने पर मारते भी थे।" — एक अनुसंधान प्रतिभागी, मैनपुर गाँव

युवाओं की गरिमा पर यह संकट केवल सामाजिक व्यवहार में नहीं, बल्कि सरकारी योजनाओं की विफलता, भ्रष्टाचार, जातीय साजिशों और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया से बहिष्करण में भी परिलक्षित होता है। मनरेगा में काम माँगने गई महिलाओं को प्रधानी से कोई उत्तर नहीं मिला, महीनों इंतजार के बावजूद काम नहीं मिला।

*आजीविका, अस्वीकृति और सामाजिक बहिष्करण का चक्र*

मुसहर युवाओं की आजीविका रणनीतियाँ एक 'अस्वीकृति चक्र' का हिस्सा बन गई हैं:

- सरकारी योजनाओं में सबसे अंत में स्थान मिलना
- बाज़ार में दुकान खोलने पर विपक्ष की साजिशें
- कौशल विकास की अनुपलब्धता
- शराब की बिक्री जैसे कार्यों में उलझना और उससे उपजी सामाजिक आलोचना

"हमारी दुकानें नहीं चलतीं, लेकिन जो लोग शराब बेचते हैं, उनकी दुकानें चलती हैं।" — फूलमती, खदही बस्ती

*सततता या संघर्ष?*

मुसहर युवाओं की आजीविका रणनीतियाँ सततता की ओर नहीं, बल्कि संघर्ष की ओर संकेत करती हैं। सामाजिक बहिष्करण, आर्थिक संसाधनों की अनुपलब्धता, जातीय कलंक, सरकारी विफलताएँ और गरिमा का लगातार हनन—इन सबने मुसहर युवाओं को अपने भविष्य के प्रति आशाविहीन बना दिया है। प्रवास, अस्थायी रोजगार और अस्वीकृति से भरे उनके जीवन में 'सततता' एक धुंधली कल्पना मात्र है।

**चर्चा: मुसहर युवाओं के लिए आगे की राह — राज्य और नागरिक समाज हेतु सुझावात्मक दिशा-निर्देश**

इस शोध में मुसहर युवाओं की आजीविका, सततता और गरिमा के संकट पर व्यापक चर्चा के पश्चात यह स्पष्ट हुआ है कि इनकी आजीविका की स्थिति किसी आकस्मिक घटना का परिणाम नहीं है, बल्कि यह दीर्घकालीन सामाजिक बहिष्करण और वंचना की ऐतिहासिक प्रक्रिया में निहित है। मुसहर युवाओं को शिक्षा, कौशल विकास और रोजगार के अवसरों से लगातार वंचित रखा गया है। यह सिलसिला केवल सामाजिक दूरी तक सीमित नहीं रहा, बल्कि इसने उन्हें अनौपचारिक श्रम की ओर मोड़ने के लिए विवश किया, जहाँ वे जीविका के लिए न्यूनतम साधनों पर आश्रित रहते हैं।

स्थिर और सुरक्षित आजीविका के अवसरों की अनुपलब्धता एवं उनके साथ जुड़ा जातिगत कलंक इस हद तक व्याप्त है कि मुसहर युवाओं के लिए गाँवों में सम्मानजनक जीवन जीना लगभग असंभव हो गया है। वर्तमान पीढ़ी के अधिकांश युवक कृषि मजदूरी जैसे पारंपरिक श्रम कार्यों से हटकर औद्योगिक श्रम की ओर प्रवास कर रहे हैं, किंतु यह रणनीति भी उनके जीवन के समग्र सुधार में असफल सिद्ध हो रही है। सामाजिक हीनता, जातिगत अपमान और कौशल की कमी के चलते प्रवास के बावजूद उन्हें केवल निम्नस्तरीय और असुरक्षित कार्य ही प्राप्त होते हैं।

प्रवास भी एक संसाधन-निर्भर रणनीति है, जिसमें सामाजिक नेटवर्क, आर्थिक पूँजी और मार्गदर्शन की आवश्यकता होती है। मुसहर युवा इन सभी संसाधनों में विपन्न हैं, जिसके कारण वे गैर-मुसहर समुदायों पर निर्भर होकर अत्यंत कम वेतन पर श्रम कर रहे हैं। नई जानकारी और कौशल के अवसरों तक उनकी पहुँच अत्यंत सीमित है, जिससे वे ऐतिहासिक बहिष्करण की स्थिति में आज भी फँसे हुए हैं।

*सततता और गरिमा के संदर्भ में सामाजिक पुनर्संरचना की आवश्यकता*

इस अध्ययन में मुसहर युवाओं की आजीविका संबंधी संघर्षों के स्वरूप और उनके समाधान की संभावनाओं पर प्रकाश डाला गया है। यहाँ 'सततता' का आशय केवल पर्यावरणीय संरक्षण या संसाधनों के क्षरण से नहीं है (जैसा कि ब्रंटलैंड रिपोर्ट, 1987 में वर्णित है), बल्कि यह सामाजिक संबंधों, अवसरों, सामाजिक प्रतिष्ठा एवं समर्थन प्रणालियों में टिके रहने की क्षमता से संबंधित है। यह अवधारणा सामाजिक सततता के परिप्रेक्ष्य में आती है, जिसका आशय मानव कल्याण, सामाजिक न्याय, सामाजिक समरसता, सांस्कृतिक विविधता, लोकतांत्रिक अधिकार, लैंगिक समानता, मानवाधिकार, सहभागिता और मानव क्षमताओं के विकास से है (Boström, 2012; Baffoe & Mutisya, 2015)। मुसहर युवाओं के लिए गरिमा, सततता और आजीविका परस्पर जुड़ी हुई अवधारणाएँ हैं, जिनकी अनुपस्थिति उन्हें आज भी गहरे संघर्षों से जोड़ती है।

*राज्य और नागरिक समाज की भूमिका: सुझावात्मक मॉडल*

मुसहर युवाओं की सततता और गरिमा की पुनर्स्थापना हेतु व्यावहारिक हस्तक्षेप की आवश्यकता है। सतत विकास के लक्ष्य (SDG) स्पष्ट रूप से यह दर्शाते हैं कि सामाजिक मुद्दों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए—विशेषतः लक्ष्य 1 (गरीबी की समाप्ति) और लक्ष्य 2 (भुखमरी की समाप्ति) से आरंभ कर लक्ष्य 3 (स्वास्थ्य) और लक्ष्य 4 (शिक्षा) की ओर बढ़ते हुए (Kroll et al., 2019)। इन लक्ष्यों की पारस्परिकता समाज में दीर्घकालिक स्थायित्व और सामाजिक समावेशन की दिशा में कार्य करती है।

परंतु वर्तमान स्थिति में मुसहर युवाओं के संदर्भ में SDG लक्ष्यों की पूर्ति अभी तक नहीं हो पाई है। उनकी शिक्षा, कौशल और गरिमापूर्ण जीवन की आवश्यकता को प्राथमिकता देने की अत्यंत आवश्यकता है। यद्यपि राज्य द्वारा सार्वजनिक वितरण प्रणाली, आवास योजना या कौशल विकास कार्यक्रमों की योजनाएँ चलाई जा रही हैं, फिर भी ज़मीनी स्तर पर ये प्रयास भ्रष्टाचार, लापरवाही और जातिगत भेदभाव के कारण विफल हो जाते हैं।

स्थानीय प्रशासन और पंचायत स्तर की संस्थाओं को विशेष प्रयास करने होंगे ताकि मुसहर युवाओं को शिक्षा, कौशल, सामाजिक सुरक्षा एवं गरिमा का अधिकार मिल सके। जब ये आधारभूत आवश्यकताएँ सुनिश्चित की जाएँगी, तभी उनके भीतर आत्म-विश्वास का संचार होगा और वे अपने भविष्य को लेकर सकारात्मक दिशा में सोच पाएँगे। इससे वे न केवल अपने सामाजिक स्थान को पुनः स्थापित कर पाएँगे, बल्कि सततता की वैश्विक अवधारणाओं से जुड़कर समाज में सार्थक भागीदारी भी कर पाएँगे।

मुसहर युवाओं की सामाजिक सततता के लिए केवल आर्थिक आजीविका पर्याप्त नहीं है, बल्कि गरिमा, शिक्षा, कौशल, सामाजिक समावेशन और समान अधिकारों की गारंटी भी आवश्यक है। राज्य एवं नागरिक समाज को मिलकर एक सहभागी एवं उत्तरदायी ढाँचा विकसित करना होगा, जिसमें मुसहर युवाओं को केवल 'लाभार्थी' नहीं, बल्कि 'साझेदार' के रूप में देखा जाए। यही दृष्टिकोण उनके लिए स्थायी विकास, गरिमा युक्त जीवन और ऐतिहासिक बहिष्करण से मुक्ति की राह खोल सकता है।

## निष्कर्ष

मुसहर युवाओं के जीवन में शिक्षा, रोजगार, सामाजिक समर्थन, गरिमा और जीवन की निश्चितता का अभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। उनके लिए 'सततता' (Sustainability) का अर्थ पारंपरिक पर्यावरणीय या संसाधन-आधारित स्थायित्व न होकर, एक ऐसे जीवन से है जिसमें उन्हें एक सुरक्षित आवास, नियमित रोजगार, सरकार की योजनाओं से लाभ और बुनियादी जीवन-निर्वाह के साधन मिल सकें—क्योंकि यही उनकी तत्काल ज़रूरत है और यही वह संघर्ष है जिसे वे पीढ़ियों से झेलते आए हैं।

वर्तमान सामाजिक संरचना में उनका स्थान अत्यंत निम्न और हाशिए पर है, जिसके कारण उन्हें स्थायी आर्थिक अस्थिरता, गरिमा के हनन और सामाजिक अवमानना का सामना करना पड़ता है। यह स्थिति उन्हें सामाजिक पदानुक्रम में जकड़े रखती है और उनके जीवन में बहुविध वंचनाओं (intersectional marginalities) को निरंतर बनाए रखती है। यह परिदृश्य न केवल उनके भविष्य की आकांक्षाओं को प्रभावित करता है, बल्कि उनकी आजीविका रणनीतियों और सामाजिक सततता की संभावनाओं को भी सीमित कर देता है।

सैद्धांतिक रूप से यह स्पष्ट है कि मुसहर युवाओं और व्यापक हाशिए पर स्थित समुदायों के संदर्भ में 'सततता' की अवधारणा को पारंपरिक परिभाषा—जो भविष्य की पीढ़ियों के लिए संसाधनों के संतुलित उपयोग की बात करती है—से आगे बढ़कर पुनर्परिभाषित करने की आवश्यकता है। यहाँ सततता का तात्पर्य 'जीवनीयता' (survivability) से है, जहाँ व्यक्ति की प्राथमिक चिंता केवल प्रकृति या पारिस्थितिकी नहीं, बल्कि स्वयं के अस्तित्व, सम्मान और सामाजिक समावेशन की होती है।

इसलिए यह आवश्यक है कि सततता की धारणा को सामाजिक सततता (social sustainability) के व्यापक दृष्टिकोण से जोड़ा जाए, जो जातीय संरचना, ऐतिहासिक बहिष्करण (जैसे अस्पृश्यता), सामाजिक विषमता और गरिमा जैसे कारकों को समाहित करे। जैसा कि Gupta और Vegelin (2016) तथा Song (2015) ने बताया है, समाज में गरिमा और समानता आजीविका रणनीतियों को न केवल प्रभावित करती हैं, बल्कि सततता के पूरे ढाँचे को भी परिभाषित करती हैं।

इन परिस्थितियों में 'हाशियाकरण' (marginalization) केवल आर्थिक नहीं बल्कि सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक भी होता है, जो युवाओं को न केवल रोजगार के अवसरों से दूर करता है, बल्कि उनकी आत्मछवि, व्यवहारिक आत्मविश्वास और सामाजिक भागीदारी की क्षमता को भी सीमित करता है। प्रवास उनके लिए जीवनीयता और सततता का एक आवश्यक साधन अवश्य बन गया है, परंतु यह रणनीति भी उन्हें नए प्रकार के निर्भरता, असुरक्षा और सामाजिक उपेक्षा में धकेल देती है।

यदि मुसहर युवाओं को गरिमापूर्ण जीवन, संवाद की क्षमता और व्यवहारिक आत्मविश्वास प्राप्त हो, तो वे न केवल सरकार की योजनाओं का पूर्ण लाभ ले सकेंगे, बल्कि स्थायी रोजगार की दिशा में भी आगे बढ़ पाएँगे। इससे वे 'केवल जीवित रहने' की अवस्था से आगे बढ़कर 'सतत विकास' की कल्पना करने की दिशा में सोच सकेंगे।

अतः, मुसहर युवाओं के संदर्भ में सततता की अवधारणा को जीवनीयता, सामाजिक समावेशन, गरिमा और अधिकार आधारित दृष्टिकोण से देखने की आवश्यकता है। यही वह आधार है जिस पर न केवल उनका भविष्य, बल्कि एक अधिक न्यायपूर्ण और समानतामूलक समाज की नींव रखी जा सकती है।

## संदर्भ सूची:

1. Ambedkar, B. R., & Rodrigues, V. (2002). *The essential writings of B. R. Ambedkar*. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
2. Baffoe, G., & Mutisya, E. (2015). सामाजिक स्थिरता: संकेतकों की समीक्षा और व्यावहारिक अनुप्रयोग। *Environmental Management and Sustainable Development*, 4(2), 242–262.
3. Boström, M. (2012). एक अनुपस्थित स्तंभ? सामाजिक स्थिरता को सिद्धांत और व्यवहार में लाने की चुनौतियाँ। *Sustainability: Science, Practice and Policy*, 8(1), 3–14. http://www.google.com/archives/vol8iss1/introduction.bostrom.html
4. Castro, C. J. (2004). सतत विकास: मुख्यधारा और आलोचनात्मक दृष्टिकोण। *Organization & Environment*, 17(2), 195–225. http://www.jstor.org/stable/2616286

5. Chand, D. (2020). प्रवासी श्रमिकों की आजीविका और हाशियाकरण: कोविड-19 महामारी में राज्य और गैर-राज्य की भूमिका। *Migration and Diasporas: An Interdisciplinary Journal*, 1(3), 72–102।
6. Chand, D., & Banerjee, S. (2019). प्रवास और संघर्ष: उत्तर प्रदेश के मुसहर समुदाय की आजीविका रणनीति। *Journal of Social Work Education, Research and Action (SWERA)*, 5(1), 33–50।
7. Chembars, R., & Conway, G. (1991). सतत ग्रामीण आजीविका: 21वीं सदी के लिए एक व्यावहारिक अवधारणा। *IDS Discussion Paper*, 296. http://publications.iwmi.org/pdf/H_32821.pdf
8. Chowdhury, R. (2010). 'The toad less travelled': अनुच्छेद 21A और भारत में प्राथमिक शिक्षा का मौलिक अधिकार। *Indian Journal of Constitutional Law*. http://www.commonlii.org/in/journals/INJlConLaw/2010/2.pdf
9. DESA-UN. (2018). सतत विकास लक्ष्यों की रिपोर्ट 2017, 4 अप्रैल। https://undesa.maps.arcgis.com/apps/MapSeries/index.html
10. Deshingkar, P., & Farrington, J. (2009). ग्रामीण भारत में वृत्ताकार प्रवासन और बहुस्थानीय आजीविका रणनीतियाँ। ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
11. Ellis, F. (1998). घरेलू रणनीतियाँ और ग्रामीण आजीविका विविधीकरण। *The Journal of Development Studies*, 1(1), 35–38।
12. Gupta, J., & Vegelin, C. (2016). सतत विकास लक्ष्य और समावेशी विकास। *International Environmental Agreements*, 16, 433–448।
13. Gurung, G. S., & Kollmair, M. (2005). हाशियाकरण: अवधारणाएँ और उनकी सीमाएँ। *IP6 Working Paper No-4*. http://www.nccr-pakistan.org/wp-content/uploads/2018/09/Marginality.pdf
14. Hamilton-Peach, J., & Townsley, P. (2004). *An IFAD Sustainable Livelihoods Framework*. रोम: इंटरनेशनल फंड फॉर एग्रीकल्चरल डेवलपमेंट।
15. Kibert, C. J., Thiele, L., & Peterson, A. (2012). सततता का नैतिक पक्ष। *Journal of Environment Protection*. https://scirp.org/reference/referencespapers.aspx?referenceid=1702275
16. Kroll, C., Warchold, A., & Pradhan, P. (2019). क्या हम सतत विकास लक्ष्यों में विरोधाभास को समन्वय में बदल पाए हैं? *Palgrave Communications*, 5(1), 1–11।
17. Krishna, S. (2012). भारत में लिंग और सतत आजीविका: 'साइड स्ट्रीम'/'मेनस्ट्रीम'। W. Harcourt (संपा.), *Women Reclaiming Sustainable Livelihoods* (pp. 125–141). लंदन: Palgrave Macmillan।
18. Kumar, A., & Tiwari, M. (2023). जातिगत हाशियाकरण और युवाओं की आजीविका: उत्तर भारत के ग्रामीण समुदायों पर एक अध्ययन। *Indian Journal of Rural Development*, 42(2), 113–130।
19. Kumar, V. (2019). भारत में असमानता: जाति और हिंदू सामाजिक व्यवस्था। *Transcience*, 5(1), 36–52। https://www2.hu-berlin.de/transcience/Vol5_No1_2014_36_52.pdf
20. Lal, L. (2020). *Anatomy of caste violence: The question of dignity, honour and justice in India*. कैम्ब्रिज: कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।
21. Mensah, J. (2019). सतत विकास: अर्थ, इतिहास, सिद्धांत, स्तंभ और मानवीय क्रिया के लिए निहितार्थ – साहित्य समीक्षा। *Cogent Social Sciences*, 5(1), 1653531।
22. Mosse, D. (2018). जाति और विकास: भेदभाव और लाभ की समकालीन संरचनात्मक दृष्टि। *World Development*, 110, 422–436।

23. Patnaik, S., & Prasad, C. S. (2014). सतत आजीविका की पुनर्परिभाषा: भारत में कार्यान्वयन अध्ययन से अंतर्दृष्टियाँ। *Vision*, 18(4), 353–358।
24. Raghavendra, R. H. (2020). भारत में अनुसूचित जातियों की साक्षरता और स्वास्थ्य स्थिति। *Contemporary Voice of Dalit*, 12(1), 97–110।
25. Scoones, I. (2009). आजीविका दृष्टिकोण और ग्रामीण विकास। *Journal of Peasant Studies*, 36(1), 171–196।
26. Sharma, P. (2024). सामाजिक पारिस्थितिकी और सततता: एक सैद्धांतिक समीक्षा। *Journal of Environmental Sociology*, 5(1), 45–60।
27. Singh, S. (2013). हस्तक्षेप, पहचान और हाशियाकरण: मुसहरों का एक नृवंशविज्ञान अध्ययन। *Economic and Political Weekly*, 48(20), 52–59।
28. Song, A. M. (2015). मानव गरिमा: मत्स्यपालन के लिए मानवाधिकार दृष्टिकोण का एक मूल मार्गदर्शक मूल्य। *Marine Policy*, 61, 164–170।
29. Subedi, M. (2013). जाति पर कुछ सैद्धांतिक विचार। *Dhaulagiri Journal of Sociology and Anthropology*, 7, 51–86।
30. Verma, R., & Ali, S. (2025). प्रवासी श्रम और गरिमा संकट: भारत के दलित युवाओं की आवाज़ें। *South Asian Journal of Social Justice*, 3(1), 22–41।
31. World Commission on Environment and Development (WCED). (1987). *Our Common Future*. ऑक्सफोर्ड: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।
32. Zuo, J., Jin, X., & Flynn, L. (2012). निर्माण में सामाजिक स्थिरता: एक अन्वेषणात्मक अध्ययन। *International Journal of Construction Management*, 12(2), 51–63।
33. Zylberman, A. (2018). मानव गरिमा की संबंधपरक संरचना। *Australasian Journal of Philosophy*, 96(4), 738–752।